# ॥ कबीर दोहावली ॥

## (Maxims of Kabeer)

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, काके लागूं पाँय । बलिहारी गुरु आपनो, गोविंद दियो बताय ॥ १ ॥
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान । शीष दिये जो गुरु मिलै, तो भी सस्ता जान ॥ २ ॥
सब धरती कागज करूँ, लेखनी सब बनराय । सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु गुण लिखा न जाय ॥ ३ ॥

कबीरा आप ठगाइए, और न ठगिए कोय । आप ठगे सुख होत है, और ठगे दुख होय ॥ ४ ॥
कबीरा इस संसार का, झूठा माया मोह । जिहि धारि जिता बाधावणा, तिहीं तिता अंदोह ॥ ५ ॥
कबीरा इस संसार कौ, समझाऊँ कै बार । पूँछ जो पकड़ै भेड़ की, उतर या चाहे पार ॥ ६ ॥
कबीरा एक न जाण्यां, तो बहु जाण्यां क्या होइ । एक तै सब होत है, सब तैं एक न होइ ॥ ७ ॥
कबीरा कलह और कल्पना, सतसंगति से जाय । दुख बासे भागा फिरै, सुख में रहै समाय ॥ ८ ॥
कबीरा कलि खोटी भई, मुनियर मिलै न कोइ । लालच लोभी मसकरा, तिनकूँ आदर होइ ॥ ९ ॥
कबीरा कलिजुग आइ करि, कीये बहुत जो भीत । जिन दिल बांध्या एक सूं, ते सुख सोवै निचींत ॥ १० ॥
कबीरा कहा गरबियौ, ऊंचे देखि अवास । काल्हि परयौ भू लेट्ना, ऊपरि जामे घास ॥ ११ ॥
कबीरा कहा गरबियौ, काल गहै कर केस । ना जाणै कहाँ मारिसी, कै घरि कै परदेस ॥ १२ ॥
कबीरा का तू चिंतवै, का तेरा च्यंत्या होइ । अण्च्यंत्या हरिजी करै, जो तोहि च्यंत न होइ ॥ १३ ॥
कबीरा कुल तौ सोभला, जिहि कुल उपजै दास । जिहिं कुल दास न उपजै, सो कुल आक-पलास ॥ १४ ॥
कबीरा कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं । गले राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाउं ॥ १५ ॥
कबीरा केवल राम की, तू जिनि छाँड़ै ओट । घण-अहरनि बिचि लौह ज्यूँ, घणी सहै सिर चोट ॥ १६ ॥
कबीरा खडा बाजार में, मांगे सबकी खैर । ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर ॥ १७ ॥

कबीरा खाई कोट की, पानी पिवै न कोई । जाइ मिलै जब गंगा से, तब गंगोदक होई ॥ १८ ॥
कबीरा खालिक जागिया, और ना जागे कोय । जाके विषय विष भरा, दास बन्दगी होय ॥ १९ ॥
कबीरा गर्व न कीजिए, कबहूँ न हँसिये कोय । अजहूँ नाव समुद्र में, ना जाने का होय ॥ २० ॥
कबीरा घोड़ा प्रेम का, चेतनि चाढ़ि असवार । ग्यान खड़ग गहि काल सिरि, भली मचाई मार ॥ २१ ॥
कबीरा चन्दन के निडै, नींव भी चन्दन होइ । बूडा बंस बडाइता, यों जिनी बूडे कोइ ॥ २२ ॥
कबीरा चेरा संत का, दासनि का परदास । कबीर ऐसैं होइ रक्षा, ज्यूँ पाऊँ तलि घास ॥ २३ ॥
कबीरा जग की जो कहै, भौ जलि बूडै दास । पारब्रह्म पति छांड़ि करि, करै मानि की आस ॥ २४ ॥
कबीरा जपना काठ की, क्या दिखलावे मोय । हृदय नाम न जपेगा, यह जपनी क्या होय ॥ २५ ॥
कबीरा जब हम पैदा हुए, जग हंसे हम रोये । ऐसी करनी कर चलो, हम हंसे जग रोये ॥ २६ ॥
कबीरा जात पुकारया, चढ़ चन्दन की डार । बाट लगाए ना लगे, फिर क्या लेत हमार ॥ २७ ॥
कबीरा तहां न जाइये, जहां हो कुल को हेत । साधुपनो जाने नहीं, नाम बाप को लेत ॥ २८ ॥
कबीरा तहां न जाइये, जहां सिद्ध को गांव । स्वामी कहे न बैठना, फ़िर-फ़िर पूछै नांव ॥ २९ ॥
कबीरा ते नर अन्ध है, गुरु को कहते और । हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रुठै नहीं ठौर ॥ ३० ॥
कबीरा दुनिया देहुरै, सीत नवांवरग जाइ । हिरदा भीतर हरि बसै, तू ताहि सौ ल्यो लाइ ॥ ३१ ॥
कबीरा दुबिधा दूरि करि, एक अंग है लागि । यहु सीतल बहु तपति है, दोऊ कहिये आगि ॥ ३२ ॥
कबीरा देवल ढहि पड्या, ईंट भई सेंवार । करी चिजारा सौं प्रातडी, ज्यूं ढहे न दूजी बार ॥ ३३ ॥
कबीरा धीरज के धरे, हाथी मन भर खाय । टूट एक के कारने, स्वान घरै घर जाय ॥ ३४ ॥
कबीरा नाव जर्जरी, कूडे खेवनहार । हलके हलके तिरि गए, बूडे तिनि सर भार ॥ ३५ ॥
कबीरा नौबत आपणी, दिन-दस लेहू बजाइ । ए पुर पाटन ए गली, बहुरि न देखै आइ ॥ ३६ ॥
कबीरा पढ़ियो दूरि करि, पुस्तक देइ बहाइ । बावन आषिर सोधि करि, ररै मर्मे चित्त लाइ ॥ ३७ ॥
कबीरा प्रेम न चषिया, चषि न लिया साव । सूने घर का पांहुणां, ज्यूं आया त्यूं जाव ॥ ३८ ॥
कबीरा बन-बन मे फिरा, कारणि आपणै राम । राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सवेरे काम ॥ ३९ ॥
कबीरा बादल प्रेम का, हम पर बरसा आई । अंतरि भीगी आतमा, हरी भई बनराई ॥ ४० ॥
कबीरा भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आई । सिर सौंपे सोई पिवै, नहीं तौ पिया न जाई ॥ ४१ ॥
कबीरा मन पँछी भया, भये ते बाहर जाय । जो जैसे संगति करै, सो तैसा फल पाय ॥ ४२ ॥
कबीरा मन फूल्या फिरै, करता हूँ मैं घ्रम । कोटि क्रम सिरि ले चल्या, चेत न देखै भ्रम ॥ ४३ ॥
कबीरा मन मृतक भया, दुर्बल भया सरीर । तब पैंडे लागा हरि फिरै, कहत कबीर कबीर ॥ ४४ ॥
कबीरा मनहि गयन्द है, आकुंश दै-दै राखि । विष की बेली परि रहै, अम्रत को फल चाखि ॥ ४५ ॥
कबीरा मंदिर लाख का, जडियां हीरे लालि । दिवस चारि का पेषणा, बिनस जाएगा कालि ॥ ४६ ॥
कबीरा माया मोहिनी, जैसी मीठी खांड़ । सतगुरु की कृपा भई, नहीं तौ करती भांड़ ॥ ४७ ॥
कबीरा माया पापणीं, फंध ले बैठी हाटि । सब जग तौ फंधै पडा, गया कबीरा काटि ॥ ४८ ॥
कबीरा माया पापणीं, हरि सूं करे हराम । मुखि कडियाली कुमति की, कहण न देई राम ॥ ४९ ॥

कबीरा मारू मन कूँ, टूक-टूक है जाइ । बिष की क्यारी बोइ करि, लुणत कहा पछिताइ ॥ ५० ॥
कबीरा माला मनहि की, और संसारी भेष । माला फेरे हरि मिलै, तौ अरहट कै गलि देश ॥ ५१ ॥
कबीरा मिरतक देखकर, मति धरो विश्वास । कबहूं जागे भूत है, करे पीड का नास ॥ ५२ ॥
कबीरा यह जग कुछ नहीं, खिन खारा जग मीठ । काल्ह जो बैठा भण्डपै, आज भसाने दीठ ॥ ५३ ॥
कबीरा यह तन जात है, सके तो ठौर लगा । कै सेवा कर साधु की, कै गोविंद गुन गा ॥ ५४ ॥
कबीरा यह तन जात है, सके तो लेहू बहोडि । नंगे हाथूं ते गए, जिनके लाख करोडि ॥ ५५ ॥
कबीरा राम रिझाइ लै, मुखि अमृत गुण गाइ । फूटा नग ज्यूं जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ ॥ ५६ ॥
कबीरा रेख सिन्दूर की, काजल दिया न जाइ । नैनूं रमैया रमि रहा, दूजा कहाँ समाइ ॥ ५७ ॥
कबीरा लहरि समंद की, मोती बिखरे आई । बगुला भेद न जानई, हंसा चुनी-चुनी खाई ॥ ५८ ॥
कबीरा लोहा एक है, गढ़ने में है फेर । ताहि का बखतर बने, ताहि की शमशेर ॥ ५९ ॥
कबीरा सतगुर ना मिल्या, रही अधूरी शीष । स्वाँग जती का पहरि करि, धरि-धरि माँगे भीष ॥ ६० ॥
कबीरा सब जग हंडिया, मांदल कंधि चढ़ाइ । हरि बिन अपना कोठ नहीं, देखे ठोकि बनाइ ॥ ६१ ॥
कबीरा सिरजन हार ना, मेरा हित न कोई । गुण औगुण बिहणै नहीं, स्वारथ बँधी लोई ॥ ६२ ॥
कबीरा सीप समंद की, रटे पियास पियास । समुदहि तिनका करि गिने, स्वाति बूंद की आस ॥ ६३ ॥
कबीरा सो धन संचिये, जो आगे कू होइ । शीष चढ़ाये गाठ की, जात न देख्या कोइ ॥ ६४ ॥
कबीरा सोई पीर है, जो जा नैं परपीर । जो परपीर न जानइ, सो काफिर बेपीर ॥ ६५ ॥
कबीरा सोई सूरिमा, मन सूँ मांडै झूझ । पंच पयादा पाड़ि ले, दूरि करै सब दूज ॥ ६६ ॥
कबीरा सोता क्या करे, जागो जपो मुरारि । एक दिना है सोवना, लांबे पाँव पसारि ॥ ६७ ॥
कबीरा सोता क्या करे, गुरु गोविंद के ध्यान । तेरे सिर पर यम खडा, गरज काहे का खान ॥ ६८ ॥
कबीरा सोया क्या करे, उठि न भजे भगवान । जम जब घर ले जायेंगे, पड़ी रहेगी म्यान ॥ ६९ ॥
कबीरा संगति साधु की, जौ की भूसी खाय । खीर खाँड़ भोजन मिले, ताकर संग न जाय ॥ ७० ॥
कबीरा संगति साधु की, दल आया भरपूर । इन्द्रिन को तब बांधिया, या तन किया धार ॥ ७१ ॥
कबीरा संगति साधु की, निष्फल कभी न होय । होमी चन्दन बासना, नीम न कहसी कोय ॥ ७२ ॥
कबीरा संगति साधु की, बेगि करीजै जाइ । दुर्मति दूरि गंवाइसी, देसी सुमति बताइ ॥ ७३ ॥
कबीरा संसा कोठ नहीं, हरि सूं लागा हेत । काम-क्रोध सूं झूझणा, चौडै मांग्या खेत ॥ ७४ ॥
कबीरा हरि कग नाव सूँ, प्रीति रहै इकवार । तौ मुख तैं मोती झड़ै, हीरे अन्त न पार ॥ ७५ ॥
कबीरा हरि का भावता, झीणां पंजर तास । रैणि न आवै नींदड़ी, अंगि न चढी मास ॥ ७६ ॥
कबीरा हरि का भावता, दूरैं थैं दीसंत । तन षीणा मन उनमनां, जग रूठडा फिरंत ॥ ७७ ॥
कबीरा हरि सब कूँ भजै, हरि कूँ भजै न कोई । जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होई ॥ ७८ ॥
कबीरा हरि-रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि । पाका कलस कुंभार का, बहुरि न चढ़ई चाकि ॥ ७९ ॥
कबीरा हमारा कोई नहीं, हम काहू के नाहिं । पारै पहुंचे नाव ज्यौं, मिलिके बिछुरी जाहिं ॥ ८० ॥
कबीरा हँसणाँ दूरि करि, करि रोवण सौ चित्त । बिन रोयां क्यूं पाइये, प्रेम पियारा मित्त ॥ ८१ ॥

अजहूं तेरा सब मिटै, जो जग मानै हार । घर में झजरा होत है, सो घर डारो डार ॥ ८२ ॥
अटकी भाल शरीर में, तीर रहा है टूट । चुम्बक बिना निकले नहीं, कोटि पटन को फूट ॥ ८३ ॥
अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप । अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप ॥ ८४ ॥
अपने-अपने साख की, सब ही लीनी भान । हरि की बात दुरन्तरा, पूरी ना कहूँ जान ॥ ८५ ॥
अब तौ जूझया ही बरगै, मुडि चल्यां घर दूर । सिर साहिबा कौ सौंपता, सोंच न कीजै सूर ॥ ८६ ॥
अबरन कों का बरनिये, भोपै लख्या न जाइ । अपना बाना वाहिया, कहि-कहि थाके भाइ ॥ ८७ ॥
अवगुन कहूँ शराब का, आपा अहमक होय । मानुष से पशुआ भया, दाय गाँठ से खोय ॥ ८८ ॥
अंतर्यामी एक तुम, आत्मा के आधार । जो तुम छोड़ो हाथ तो, कौन उतारे पार ॥ ८९ ॥
अंदेसड़ा न भाजिसी, संदेसौ ही कहियां । कै हरि आयां भाजिसी, कै हरि ही पास गयां ॥ ९० ॥
अंषड़ियां झाईं पड़ी, पंथ निहारि-निहारि । जीभड़ियाँ छाला पड़या, राम पुकारि-पुकारि ॥ ९१ ॥
आए हैं सो जाएँगे, राजा रंक फकीर । एक सिंघासन चढ़ि चले, एक बाँधि जंजीर ॥ ९२ ॥
आग जो लागी समुद्र में, धुआँ न प्रकट होय । सो जाने जो जरमुआ, जाकी लाई होय ॥ ९३ ॥
आछे दिन पाछे गये, हरि सो किया न हेत । अब पछितावा क्या करै, चिडिया चुग गयी खेत ॥ ९४ ॥
आपा भेटियाँ हरि मिलै, हरि मेटिया सब जाइ । अकथ कहाणी प्रेम की, कहा न कोउ पतियाइ ॥ ९५ ॥
आया था किस काम को, तू सोया चादर तान । सूरत संभाल ए गाफिला, अपना आप पहचान ॥ ९६ ॥
आवत गारी एक है, उलटन होय अनेक । कह कबीर नहिं उलटिये, वही एक की एक ॥ ९७ ॥
आस पराई राखता, खाया घर का खेत । औरन को पथ बोधता, मुख में डारे रेत ॥ ९८ ॥
आसा का ईंधण करूँ, मनसा करूँ बिभूति । जोगी फेरी फिल करूँ, यौं बिनना वो सूति ॥ ९९ ॥
आहार करे मनभावता, इंद्रिय की है स्वाद । नाक तलक पूरन भरे, तो कहिए कौन प्रसाद ॥ १०० ॥
इष्ट मिले और मन मिले, मिले सकल रस रीति । कहैं कबीर तहां जाइये, जहां सन्तन की प्रीति ॥ १०१ ॥
इस तन का दीवा करौ, बाती मेल्यूं जीवउं । लोही सींचो तेल ज्यूं, कब मुख देख पठिउं ॥ १०२ ॥
इहि उदर के कारणे, जग पाच्यो निस जाम । स्वामी-पणौ जो सिरि चढ़यो, सिर यो न एको काम ॥ १०३ ॥
उजला कपड़ा पहन करि, पान सुपारी खाहिं । एकै हरि के नाम बिन, बाँधे जमपुरि जाहिं ॥ १०४ ॥
उजला देखि न दीजिये, वग ज्यूं माडै ध्यान । धीर बौठि चपेटसी, यूँ ले बूडै ग्यान ॥ १०५ ॥
उतते कोई न आवई, पासू पूछूँ धाय । इतने ही सब जात है, भार लदाय लदाय ॥ १०६ ॥
ऊंचे पानी न टिके, नीचे ही ठहराय । नीचा सो भरिये पिये, ऊंचा प्यासा जाय ॥ १०७ ॥
ऊँचे कुल में जामिया, करनी ऊँच न होय । सौरन कलश सुरा भरी, साधु निन्दा सोय ॥ १०८ ॥
ऋद्धि सिद्धि माँगो नहीं, माँगो तुम पै येह । निसि दिन दरशन साधु को, प्रभु कबीर कहुँ देह ॥ १०९ ॥
एक कहूँ तो है नहीं, दूजा कहूँ तो गार । है जैसा तैसा रहे, रहे कबीर विचार ॥ ११० ॥
एक ते जान अनन्त, अन्य एक हो जाय । एक से परचे भया, एक बाहें समाय ॥ १११ ॥
एक दिन ऐसा होएगा, सब सूँ पड़े बिछोइ । राजा राणा छत्रपति, सावधान किन होइ ॥ ११२ ॥

एक हि बार परखिये, न वा बारम्बार । बालू तो हू किरकिरी, जो छानै सौ बार ॥ ११३ ॥

एष ले बूढी पृथमी, झूठे कुल की लार । अलष बिसारयो भेष में, बूड़े काली धार ॥ ११४ ॥

ऐसा कोई न मिले, हमको दे उपदेस । भवसागर में डूबता, कर गहि काढै केस ॥ ११५ ॥

ऐसी वाणी बोलिये, मन का आपा खोय । औरन को शीतल करे, आपहु शीतल होय ॥ ११६ ॥

कथा कीर्तन कुल विशे, भवसागर की नाव । कहत कबीरा या जगत, नाहीं और उपाय ॥ ११७ ॥

करता था सो क्यों भया, अब करि क्यों पछिताय । बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ से खाय ॥ ११८ ॥

करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि तुंड । जाने-बूझै कुछ नहीं, यौं ही अंधा रुंड ॥ ११९ ॥

कलि का स्वामी लोभिया, पीतलि घरी खटाइ । राज-दुबारा यौं फिरै, ज्यूं हरिहाई गाइ ॥ १२० ॥

कलि का स्वामी लोभिया, मनसा घरी बधाई । दैंहि पईसा ब्याज़ को, लेखां करता जाई ॥ १२१ ॥

कलि खोटा सजग आंधरा, शब्द न माने कोय । चाहे कहूँ सत आइना, सो जग बैरी होय ॥ १२२ ॥

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूंढे बन माहिं । ऐसे घट-घट राम है, दुनिया देखे नाहिं ॥ १२३ ॥

कहत सुनत सब दिन गए, उरझि न सुरझ्या मन । कगी कबीर चेत्या नहीं, अजहूं सो पहला दिन ॥ १२४ ॥

कहता तो बहूँन मिले, गहना मिला न कोय । सो कहता वह जान दे, जो नहीं गहना कोय ॥ १२५ ॥

कहते को कही जान दे, गुरु की सीख तू लेय । साकट जन और श्वान को, फ़ेरि जवाब न देय ॥ १२६ ॥

कहना सो यह कह दिया, अब कुछ कहा न जाय । एक रहा दूजा गया, दरिया लहर समाय ॥ १२७ ॥

कहा कियो हम आय कर, कहा करेंगे पाय । इनके भये न उतके, चाले मूल गवाय ॥ १२८ ॥

कहे कबीरा देय तू, जब तक तेरी देह । देह खेह हो जाएगी, कौन कहेगा देह ॥ १२९ ॥

कागद केरी नाव री, पाणी केरी गंग । कहै कबीर कैसे तिरूँ, पंच कुसंगी संग ॥ १३० ॥

कागद केरी कोठरी, मसि के कर्म कपाट । पांहनि बोई पृथमीं, पंडित पाडी बाट ॥ १३१ ॥

कागा काको घन हरे, कोयल काको देय । मीठे शब्द सुनाय के, जग अपनो कर लेय ॥ १३२ ॥

काची काया मन अथिर, थिर थिर काम करंत । ज्यूं ज्यूं नर निधडक फ़िरै, न्यूं न्यूं काल हसंत ॥ १३३ ॥

काजल केरी कोठड़ी, तैसी यहु संसार । बलिहारी ता दास की, पैसिर निकसण हार ॥ १३४ ॥

काजी-मुल्ला भ्रमियां, चल्या युनीं कै साथ । दिल थे दीन बिसारियां, करद लई जब हाथ ॥ १३५ ॥

काबा फिर कासी भया, राम भया रे रहीम । मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम ॥ १३६ ॥

काम मिलावे राम कूं, जे कोई जाणै राखि । कबीर बिचारा क्या कहै, जाकि सुकदेव बोले साखि ॥ १३७ ॥

कामी अभी न भावई, विष ही कौं ले सोधि । कुबुध्दि न जाई जीव की, भावै स्यंभु रहौ प्रमोधि ॥ १३८ ॥

कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय । भक्ति करे कोइ सूरमा, जाति वरन कुल खोय ॥ १३९ ॥

कामी लज्जा ना करै, न माहें अहिलाद । नींद न माँगै साँथरा, भूख न माँगे स्वाद ॥ १४० ॥

काया काठी काल घुन, जतन-जतन सो खाय । काया वैद्य ईश बस, मर्म न काहू पाय ॥ १४१ ॥

काया मंजन क्या करै, कपडा धोई न धोई । उजला हुवा न छूटिये, सुख नींद्डी न सोई ॥ १४२ ॥

काल करे से आज कर, सबहि सात तुव साथ । काल काल तू क्या करे, काल काल के हाथ ॥ १४३ ॥

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब । पल में प्रलय होयेगी, बहुरि करेगा कब ॥ १४४ ॥

काहे भरोसा देह का, बिनस जात छिन माहिं । साँस-साँस सुमिरन करो, और यतन कछु नाहिं ॥ १४५ ॥
कुटिल वचन सबसे बुरा, जारि कर तन हार । साधु वचन जल रूप है, बरसे अमृत धार ॥ १४६ ॥
कुल खोया कुल ऊबरै, कुल राख्यो कुल जाइ । राम निकुल कुल भेंटि लैं, सब कुल रह्या समाइ ॥ १४७ ॥
केतन दिन ऐसे गए, अन रुचे का नेह । अवसर बोवे उपजे नहीं, जो नहिं बरसे मेह ॥ १४८ ॥
कैसो कहा बिगाड़िया, जो मुंडै सौ बार । मन को काहे न मुंडिये, जामे विषम-विकार ॥ १४९ ॥
को छूटौ इहिं जाल परि, कत फुरंग अकुलाय । ज्यों-ज्यों सुरझि भजौ चहै, त्यों-त्यों उरझत जाय ॥ १५० ॥
कोई राखै सावधां, चेतनि पहरै जागि । बस्तर बासन सूँ खिसै, चोर न सकई लागि ॥ १५१ ॥
कांचे भाडें से रहे, ज्यों कुम्हार का देह । भीतर से रक्षा करे, बाहर चोई देह ॥ १५२ ॥
क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहि । तुम देखत ओगुन करौं, कैसे भावों तोहि ॥ १५३ ॥
क्यूं नृप-नारी नींदिये, क्यूं पनिहारी कौ मान । वा माँग सँवारे पील कौ, या नित उठि सुमिरै राम ॥ १५४ ॥
क्षमा बड़ेन को उचित है, छोटे को उत्पात । कहां विष्णु का घटि गया, जो भृगु मारी लात ॥ १५५ ॥
खूब खांड है खीचड़ी, माहीं पडै दुक लूंण । पेडा रोटी खाइ करि, गला कटावै कौंण ॥ १५६ ॥
खेत ना छोड़े सूरमा, जूझे दो दल मोह । आशा जीवन मरण की, मन में राखें नोह ॥ १५७ ॥
खूंदन तौ धरती सहै, बाढ़ सहै बनराइ । कुसबद तौ हरिजन सहै, दूजै सह्या न जाइ ॥ १५८ ॥
गर्भ योगेश्वर गुरु बिना, लागा हर का सेव । कहे कबीर बैकुण्ठ से, फेर दिया शुकदेव ॥ १५९ ॥
गारी ही सों ऊपजे, कलह कष्ट और मींच । हारि चले सो साधु है, लागि चले सो नींच ॥ १६० ॥
गोत्यंद के गुण बहुत हैं, लिखै जु हिरदै माहि । डरता पाणी जा पीऊं, मति वै धोये जाहि ॥ १६१ ॥
गाँठी दाम न बांधई, नहिं नारी से नेह । कह कबीर ता साधु की, हम चरनन की खेह ॥ १६२ ॥
गाँठी होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देह । आगे हाट न बानिया, लेना होय सो लेह ॥ १६३ ॥
ग्यान रतन का जतनकर, माटी का संसार । आया कबीर फिर गया, फीका है संसार ॥ १६४ ॥
ग्यानी मूल गँवाइया, आपण भये करना । ताथैं संसारी भला, मन मैं रहै डरना ॥ १६५ ॥
घट का परदा खोलकर, सम्मुख दे दीदार । बाल सनेही सांइयां, आवा अन्त का यार ॥ १६६ ॥
घी के तो दर्शन भले, खाना भला न तेल । दाना तो दुश्मन भला, मूरख का क्या मेल ॥ १६७ ॥
चन्दन जैसा साधु है, सर्प हि सम संसार । वाके अंग लपटा रहे, मन मे नाहिं विकार ॥ १६८ ॥
चतुराई सूवै पढ़ी, सोइ पंजर मांहि । फिरि प्रमोधै आन कौं, आपण समझे नाहिं ॥ १६९ ॥
चतुराई हरि ना मिलै, ए बातां की बात । एक निस प्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाथ ॥ १७० ॥
चलती चक्की देख के, दिया कबीरा रोय । दुइ पट भीतर आइके, साबुत बचा न कोय ॥ १७१ ॥
चाह मिटी चिंता मिटी, मनवा बेपरवाह । जिसको कुछ नहीं चाहिए, वह है शाहनशाह ॥ १७२ ॥
छिन ही चढ़े छिन ही उतरे, सो तो प्रेम न होय । अघट प्रेम पिंजरे बसे, प्रेम कहावे सोय ॥ १७३ ॥
छीर रूप सतनाम है, नीर रूप व्यवहार । हंस रूप कोई साधु है, सत का छाननहार ॥ १७४ ॥
जग में बैरी कोई नहीं, जो मन शीतल होय । यह आपा तो डाल दे, दया करे सब कोय ॥ १७५ ॥
जप-तप दीसैं थोथरा, तीरथ व्रत बेसास । सूवै सैंबल सेविया, यौ जग चल्या निरास ॥ १७६ ॥

जब गुण को गाहक मिले, तब गुण लाख बिकाई । जब गुण को गाहक नहीं, तब कौडी बदले जाई ॥ १७७ ॥

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाहि । प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाहि ॥ १७८ ॥

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहीं । सब अंधियारा मिट गया, जब दीपक देखा माहीं ॥ १७९ ॥

जब लग आस शरीर की, मिरतक हुआ न जाय । काया माया मन तजै, चौडे रहा बजाय ॥ १८० ॥

जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय । नाता तोडे हरि भजे, भगत कहावें सोय ॥ १८१ ॥

जब लग भक्ति सकाम है, सब लग निष्फल सेव । कहै कबीर वै क्यूँ मिलै, निष्कामी निज देव ॥ १८२ ॥

जबही नाम हिरदे घरा, भया पाप का नास । मानो चिंगारी आग की, परी पुरानी घास ॥ १८३ ॥

जल की जमी में है रोपा, अभी सींचें सौ बार । कबीरा खलक न तजे, जामे कौन विचार ॥ १८४ ॥

जल ज्यों प्यारा माहरी, लोभी प्यारा दाम । माता प्यारा बालका, भक्ति प्यारा नाम ॥ १८५ ॥

जल में कुम्भ कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी । फूटा कुम्भ जल जलहि समा, यह तथ कह्यौ कहानी ॥ १८६ ॥

जल में बसे कमोदिनी, चंदा बसे आकास । जो है जा को भावना, सो ताहि के पास ॥ १८७ ॥

जहाँ आपा तहाँ आपदा, जहाँ संशय तहाँ रोग । कह कबीर यह क्यों मिटैं, चारों बाधक रोग ॥ १८८ ॥

जहां काम तहां नाम नहिं, जहां नाम नहिं काम । दोनों कबहूं नहिं मिले, रवि रजनी इक धाम ॥ १८९ ॥

जहां गाहक तहां मैं नहीं, जहां मैं गाहक नाँय । मूरख यह भरमत फिरे, पकड़ शब्द की छाँय ॥ १९० ॥

जहाँ दया तहाँ धर्म है, जहाँ लोभ तहाँ पाप । जहाँ क्रोध तहाँ पाप है, जहाँ क्षमा तहाँ आप ॥ १९१ ॥

जा कारण जग ढूंढिया, सो तो घट ही मांहि । परदा दिया भरम का, ताते सूझे नाहिं ॥ १९२ ॥

जा कारणि में ढूँढती, संमुख मिलिया आइ । धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकौं पाइ ॥ १९३ ॥

जा पल दरसन साधु का, ता पल की बलिहारी । राम नाम रसना बसे, लीजै जनम सुधारी ॥ १९४ ॥

जाके जिव्या बन्धन नहीं, ह्रदय में नहीं साँच । वाके संग न लागिये, खाले वटिया काँच ॥ १९५ ॥

जाके मुख माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप । पुछुप बास तें पामरा, ऐसा तत्व अनूप ॥ १९६ ॥

जागन में सोवन करे, साधन में लौ लाय । सूरत डोर लागी रहे, तार टूट नाहिं जाय ॥ १९७ ॥

जाता है सो जाण दे, तेरी दसा न जाइ । खेवटिया की नांव ज्यूं, घने मिलेंगे आइ ॥ १९८ ॥

जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिए ग्यान । मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥ १९९ ॥

जानि बूझि सांचहिं तजे, करै झूठ सूँ नेहु । ताकि संगति राम जी, सुपिने ही पिनि देहु ॥ २०० ॥

जास हियाली तू बसै, कबीरा तास मिलाइ । नित का गंजर को सहै, नहिंतर बेगि उठाइ ॥ २०१ ॥

जांमण मरण बिचारि करि, कूडे काम निबारि । जिनि पंथूं तुझ चालणा, सोई पंथ संवारि ॥ २०२ ॥

जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ । मैं बपुरा बूडन डरा, रहा किनारे बैठ ॥ २०३ ॥

जिनके नौबति बाजती, भैंगल बंधते बारि । एकै हरि के नाव बिन, गए जनम सब हारि ॥ २०४ ॥

जिस मरनै यैं जग डरै, सो मेरे आनन्द । कब मरिहूँ कब देखिहूँ, पूरन परमानंद ॥ २०५ ॥

जिसहि न कोई विसहि तू, जिस तू तिस सब कोई । दरिगह तेरी सांइयाँ, जा मरूम कोइ होई ॥ २०६ ॥

जिहिं घटि प्रीति न प्रेमरस, फुनि रसना नहीं राम । ते नर इस संसार में, उपजि भये बेकाम ॥ २०७ ॥

जिहिं जिवरी से जाग बंधा, तु जनी बंधे कबीर । जासी आटा लौन ज्यों, सों समान शरीर ॥ २०८ ॥
जिहिं धरि साधु न पूजिये, हरि की सेवा नाहिं । ते घर मरघट सा दिशे, भूत बसै दिन माहिं ॥ २०९ ॥
जिहिं हिरदै हरि आइया, सो क्यूं छाना होइ । जतन-जतन करि दाबिये, तऊ उजाला सोइ ॥ २१० ॥
जीवत कोय समुझै नहीं, मुवा न कहा संदेश । तन-मन से परिचय नहीं, ताको क्या उपदेश ॥ २११ ॥
जीवन थैं मरिबो भलौ, जो मरि जानैं कोइ । मरनैं पहली जे मरै, जो कलि अजरामर होइ ॥ २१२ ॥
जेता मीठा बोलरगा, तेता साधन जारिग । पहली था दिखाइ करि, उडै देसी आरिग ॥ २१३ ॥
जेती देखौ आत्मा, तेता सालिगराम । राधू प्रतषि देव है, नहीं पाथ सूँ काम ॥ २१४ ॥
जेते तारे रैणि के, तेतै है बैरी मुझ । धड़ सूली सिर कंगुरै, तऊ न बिसारौ तुझ ॥ २१५ ॥
जैसा  भोजन खाइये, तैसा ही मन होय । जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय ॥ २१६ ॥
जैसी मुख तै नीकसै, तैसी चाले चाल । पारब्रह्म नेड़ा रहै, पल में करै निहाल ॥ २१७ ॥
जो ऊग्या सो अन्तबै, फूल्या सो कुमिलाइ । जो चिणियां सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ ॥ २१८ ॥
जो घट प्रेम न संचरे, सो घट जान समान । जैसे खाल लुहार की, साँस लेतु बिन प्रान ॥ २१९ ॥
जो जन भीगे रामरस, विगत कबहूँ ना रूख । अनुभव भाव न दरसते, ना दु:ख ना सुख ॥ २२० ॥
जो जाने जीव आपना, करहीं जीव का सार । जीवा ऐसा पाहौना, मिले ना दूजी बार ॥ २२१ ॥
जो तु चाहे मुक्ति को, छोड़ दे सबकी आस । मुक्त ही जैसा हो रहे, सब कुछ तेरे पास ॥ २२२ ॥
जो तोकूं काँटा बुवै, ताहि बोय तू फूल । तोकू फूल के फूल है, बाँकू है तिरशूल ॥ २२३ ॥
जो रोऊँ तो बल घटै, हँसो तो राम रिसाइ । मन ही माहिं बिसूरणा, ज्यूँ घुँण काठहिं खाइ ॥ २२४ ॥
ज्यों तिलमां ही तेल है, ज्यों चकमक में आग । तेरा सांई तुझमें बसे, जाग सके तो जाग ॥ २२५ ॥
ज्यों नैनन में पूतली, त्यों मालिक घर माहिं । मूरख लोग न जानिए, बाहर ढूंढत जांहि ॥ २२६ ॥
झल बावै झल दाहिनै, झलहि माहि त्योहार । आगै-पीछै झलमाई, राखै सिरजनहार ॥ २२७ ॥
झिरमिर-झिरमिर बरसिया, पांहन ऊपर मेंह । माटी गलि सैजल भई, पांहन बोही तेह ॥ २२८ ॥
झूठे को झूठा मिले, दूंगा बंधे सनेह । झूठे को सांचा मिले, तब ही टूटे नेह ॥ २२९ ॥
झूठे सुख को सुख कहै, मानता है मन मोद । जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥ २३० ॥
तन को जोगी सब करे, मन को बिरला कोय । सहजै सब विधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥ २३१ ॥
तन बोहत मन काग है, लक्ष योजन उड़ जाय । कबहु के धर्म अगम दयी, कबहुं गगन समाय ॥ २३२ ॥
तब लग तारा जगमगे, जब लग उगे न सूर । तब लग जीव जग कर्मवश, जब लग ग्यान न पूर ॥ २३३ ॥
तरवर तास विलंबिए, बारह मास फ़लंत । सीतल छाया गहर फ़ल, पंछी केलि करंत ॥ २३४ ॥
तिनका कबहुँ न निंदिये, जो पाँयन तर होय । कबहुँ उड आँखिन परे, पीर घनेरी होय ॥ २३५ ॥
तीर तुपक से जो लड़े, सो तो शूर न होय । माया तजि भक्ति करे, सूर कहावै सोय ॥ २३६ ॥
तीरथ करि-करि जग मुवा, ढूंढै पाणी नाहि । रामहि राम जपतंडां, काल घसीटा जाहि ॥ २३७ ॥
तीरथ गये ते एक फल, सन्त मिले फल चार । सत्गुरु मिले अनेक फल, कहें कबीर विचार ॥ २३८ ॥
तीरथ तो सब बेलड़ी, सब जग मेल्या छाय । कबीर मूल निकंदिया, कौण हालाहल खाय ॥ २३९ ॥

तू कहता कागद लेखी, मैं कहता आंखिन देखी । मैं कहता सुरझावन हारि, तू राख्यो उरझाई हारि ॥ २४० ॥

तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँ । वारी फेरी बलि गई, जित देखौं तित तू ॥ २४१ ॥

ते दिन गये अकारथी, संगत भई न संत । प्रेम बिना पशु जीवना, भक्ति बिना भगवंत ॥ २४२ ॥

तेरा संगी कोई नहीं, सब स्वारथ बंधी लोइ । मन परतीति न ऊपजै, जीव बेसास न होइ ॥ २४३ ॥

तेरा साँई तुझमें है, ज्यों पहुपन में बास । कस्तूरी का हिरन ज्यों, फिर-फिर ढूंढत घास ॥ २४४ ॥

त्रिष्णां सींची ना बुझै, दिन दिन बढती जाइ । जवासा के रुष ज्यूं, घण मेहां कुमिलाइ ॥ २४५ ॥

दस द्वारे का पिंजरा, तामें पंछी मौन । रहे को अचरज भयौ, गये अचम्भा कौन ॥ २४६ ॥

दया कौन पर कीजिये, का पर निर्दय होय । सांई के सब जीव है, कीरी कुंजर दोय ॥ २४७ ॥

दया भाव ह्रदय नहीं, ग्यान थके बेहद । ते नर नरक ही जायेंगे, सुनि-सुनि साखी शबद ॥ २४८ ॥

दान दिये धन ना घटे, नदी ने घटे नीर । अपनी आँखों देख लो, यों क्या कहे कबीर ॥ २४९ ॥

दिल का मरहम ना मिला, जो मिला सो गर्जी । कह कबीर आसमान फटा, क्योंकर सीवे दर्जी ॥ २५० ॥

दीठा है तो कस कहूं, कहां न को पतियाइ । हरि जैसा है तैसा रहो, तू हरि-हरि गुण गाइ ॥ २५१ ॥

दुख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय । जो सुख में सुमिरन करे, दुख काहे को होय ॥ २५२ ॥

दुखिया भूखा दुख कौं, सुखिया सुख कौं झूरि । सदा अजंदी राम के, जिनि सुख-दुख गेल्हे दूरि ॥ २५३ ॥

दुर्बल को न सताइये, जाकि मोटी हाय । बिना जीव की हाय से, लोहा भसम हो जाय ॥ २५४ ॥

दुर्लभ मानुष जन्म है, देह न बारम्बार । तरुवर ज्यों पत्ती झड़े, बहुरि न लागे डार ॥ २५५ ॥

देह खेह होय जायगी, कौन कहेगा देह । निश्चय कर उपकार ही, जीवन का फ़न येह ॥ २५६ ॥

देह धरे का दंड है, सब काहू को होय । ग्यानी भुगते ग्यान से, अग्यानी भुगते रोय ॥ २५७ ॥

दोस पराए देखि करि, चला हसन्त हसन्त । अपने याद न आवई, जिनका आदि न अंत ॥ २५८ ॥

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय । माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय ॥ २५९ ॥

नहाये धोये क्या हुआ, जो मन मैल न जाय । मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय ॥ २६० ॥

नहीं शीतल है चन्द्रमा, हिम नहीं शीतल होय । कबीरा शीतल सन्त जन, नाम सनेही सोय ॥ २६१ ॥

ना गुरु मिल्या न सिष भया, लालच खेल्या डाव । दुन्यू बूड़े धार में, चढ़ि पाथर की नाव ॥ २६२ ॥

नान्हा कातौ चित्त दे, महँगे मोल बिलाइ । गाहक राजा राम है, और न नेडा आइ ॥ २६३ ॥

निरबैरी निहकामता, साईं सेती नेह । विषिया सूं न्यारा रहै, संतहि का अंग एह ॥ २६४ ॥

नीर पियावत क्या फिरै, सायर घर-घर बारि । जो त्रिषावन्त होइगा, सो पीवेगा झखमारि ॥ २६५ ॥

निंदक नियारे राखिये, आंगन कुटि छबाय । बिन पाणी बिन साबुना, निरमल करै सुभाय ॥ २६६ ॥

नींद निशानी मौत की, उठ कबीरा जाग । और रसायन छांड़ि के, नाम रसायन लाग ॥ २६७ ॥

नैना अंतर आव तू, ज्यूं हौं नैन झंपेउ । ना हौं देखू और को, न तुझ देखन देउ ॥ २६८ ॥

पढी पढी के पत्थर भया, लिख लिख भया जू ईंट । कहें कबीरा प्रेम की, लगी न एको छींट ॥ २६९ ॥

पत्ता बोला वृक्ष से, सुनो वृक्ष बनराय । अब के बिछुड़े ना मिले, दूर पड़ेंगे जाय ॥ २७० ॥

पढे गुनै सीखै सुनै, मिटी न संसै सूल । कहै कबीर कासों कहूं, यह ही दुःख का मूल ॥ २७१ ॥

पतिव्रता मैली भली, गले कांच को पोत । सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रवि ससि को जोत ॥ २७२ ॥

पतिव्रता मैली रहे, काली कुचल कुरूप । पतिव्रता के रूप पर, वारो कोटि सरूप ॥ २७३ ॥

पद गाएं मन हरषियां, साषी कहां अनंद । सो तत नांव न जाणियां, गल में पड़िया फंद ॥ २७४ ॥

पदारथ पेलि करि, कंकर लीया हाथि । जोड़ी बिछटी हंस की, पड़या बगां के साथि ॥ २७५ ॥

परनारी का राचणौ, जिसकी लहसण की खानि । खूणैं बेसिर खाइया, परगट होइ दिवानि ॥ २७६ ॥

परनारी राता फिरैं, चोरी बिढ़िता खाहिं । दिवस चारि सरसा रहै, अति समूला जाहिं ॥ २७७ ॥

परबति परबति मैं फिरया, नैन गंवाए रोइ । सो बूटी पाऊँ नहीं, जातैं जीवनि होइ ॥ २७८ ॥

पहुँचेंगे तब कहैगें, उमड़ैंगे उस ठांई । आजहूं बेरा समंद मैं, बोलि बिगू पैं कांई ॥ २७९ ॥

पाणी केरा बुदबुदा, अस मानस की जात । देखत ही छिप जाएगा, ज्यों सारा परभात ॥ २८० ॥

पाणी हीतै पातला, धुवाँ ही तै झीण । पवनां बेगि उतावला, सो दोस्त कबीरा कीण ॥ २८१ ॥

पावक रूपी राम है, घटि-घटि रहिया समाइ । चित चकमक लागै नहीं, ताथै घूवाँ है जाइ ॥ २८२ ॥

पाहन पूजे हरि मिलें, तो मैं पूजौं पहार । याते ये चक्की भली, पीस खाय संसार ॥ २८३ ॥

पूत पियारौ पिता कौं, गौहनि लागो घाइ । लोभ-मिठाई हाथ दे, आपण गयो भुलाइ ॥ २८४ ॥

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ, पंडित भया न कोय । ढ़ाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंड़ित होय ॥ २८५ ॥

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय । राजा-परजा जेहि रुचें, शीष देई ले जाय ॥ २८६ ॥

प्रेम प्याला जो पिये, शीष दक्षिणा देय । लोभी शीष न दे सके, नाम प्रेम का लेय ॥ २८७ ॥

प्रेम-प्रीति का चालना, पहिरि कबीरा नाच । तन-मन तापर वारहुँ, जो कोइ बौलौ साच ॥ २८८ ॥

प्रेमभाव एक चाहिए, भेष अनेक बनाय । चाहे घर में वास कर, चाहे बन को जाय ॥ २८९ ॥

पांच पहर धन्धे गया, तीन पहर गया सोय । एक पहर हरि नाम बिन, मुक्ति कैसे होय ॥ २९० ॥

फल कारण सेवा करे, करे न मन से काम । कहे कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ॥ २९१ ॥

फाटै दीदै में फिरौं, नजिर न आवै कोई । जिहि घटि मेरा साँइयाँ, सो क्यूं छाना होई ॥ २९२ ॥

फूटी आंख विवेक की, लखे ना सन्त असन्त । जाके संग दस-बीस हैं, ताको नाम महन्त ॥ २९३ ॥

बड़ा हुआ सो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर । पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ॥ २९४ ॥

बनजारे का बैल ज्यों, भरमि फ़िर्यो चहुंदेश । खांड लादी भुस खात है, बिन सतगुरु उपदेश ॥ २९५ ॥

बलिहारी गुर आपणौ, घड़ी-घड़ी सौ सौ बार । जिनि मानिष तैं देवता, करत न लागी बार ॥ २९६ ॥

बलिहारी वा दूध की, जामे निकसे घीव । घी साखी है कबीर की, चार वेद का जीव ॥ २९७ ॥

बहते को मन बहन दो, कर गहि एचहु ठौर । कह्यो सुन्यो मानै नहीं, शबद कहो दुइ और ॥ २९८ ॥

बंधे को बंधा मिले, छूटे कौन उपाय । कर संगति निरबन्ध की, पल में लेय छुड़ाय ॥ २९९ ॥

बाजीगर का बांदरा, ऐसा जीव मन के साथ । नाना नाच दिखाय कर, राखे अपने साथ ॥ ३०० ॥

बानी से पहचानिये, साम चोर की घात । अन्दर की करनी से सब, निकले मुँह की बात ॥ ३०१ ॥

बार-बार तोसों कहा, सुन रे मनवा नीच । बनजारे का बैल ज्यों, पैडा माही मीच ॥ ३०२ ॥

बारी-बारी आपणीं, चले पियारे म्यंत । तेरी बारी रे जिया, नेड़ी आवै निंत ॥ ३०३ ॥

बाहर क्या दिखलाइए, अन्दर जपिए राम । कहा काज संसार से, तुझे धनी से काम ॥ ३०४ ॥
बिन रखवाले बाहिरा, चिड़िया खाया खेत । आधा-परधा ऊबरै, चेत सकै तो चेत ॥ ३०५ ॥
बिरह-भुवगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ । राम-बियोगी ना जिवै, जिवै तो बौरा होइ ॥ ३०६ ॥
बुगली नीर बिटालिया, सायर चढ़या कलंक । और पखेरू पी गये, हंस न बौवे चंच ॥ ३०७ ॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोई । जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोई ॥ ३०८ ॥
बूँद पड़ी जो समुद्र में, ताहि जाने सब कोय । समुद्र समाना बूँद में, बूझै बिरला कोय ॥ ३०९ ॥
बोली एक अनमोल है, जो कोइ बोलै जानि । हिये तराजू तौलि के, तब मुख बाहर आनि ॥ ३१० ॥
बैध मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार । एक कबीरा ना मुआ, जेहि के राम अधार ॥ ३११ ॥
बैरागी बिरकत भला, गिरही चित्त उदार । दुहुँ चूका रीता पड़ै, वाकूँ वार न पार ॥ ३१२ ॥
बैसनो भया तौ क्या भया, बूझा नहीं बिबेक । छापा तिलक बनाइ करि, दगध्या लोक अनेक ॥ ३१३ ॥
ब्राह्मण है गुरु जगत का, साधू का गुरु नाहिं । उरझि-पुरझि करि भरि रहा, चारिउं भेदा माहिं ॥ ३१४ ॥
भक्त मरे क्या रोइये, जो अपने घर जाय । रोइये साकट बपुरे, हाटों हाट बिकाय ॥ ३१५ ॥
भक्ति गेंद चौगान की, भावे कोई ले जाय । कह कबीर कुछ भेद नाहिं, कहां रंक कहां राय ॥ ३१६ ॥
भक्ति बिगाड़ी कामियां, इन्द्री केरै स्वादि । हीरा खोया हाथ थैं, जनम गँवाया बादि ॥ ३१७ ॥
भक्ति भजन हरि नांव है, दूजा दुःख अपार । मनसा वाचा कर्मणां, कबीर सुमिरन सार ॥ ३१८ ॥
भज दीना कहूँ और ही, तन साधुन के संग । कहैं कबीर कारी गजी, कैसे लागे रंग ॥ ३१९ ॥
भारी कहौं तो बहुडरौं, हलका कहूं तौ झूठ । मैं का जाणी राम कूं, नैनूं कबहूं न दीठ ॥ ३२० ॥
भूखा-भूखा क्या करे, क्या सुनावे लोग । भांडा घड़ निज मुख दिया, सोई पूरण जोग ॥ ३२१ ॥
मन के मते न चालिये, छाडि जीव की बांणि । ताकू केरे सूत ज्यूं, उलटि अपूणा आंणि ॥ ३२२ ॥
मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक । जो मन पर असवार है, सो साधु कोई एक ॥ ३२३ ॥
मन के मारे बन गये, बन तजि बस्ती माहिं । कहैं कबीर क्या कीजिये, यह मन ठहरै नाहिं ॥ ३२४ ॥
मन के हार ए हार है, मन के जीत ए जीत । कहे कबीर हरि पाइए, मन ही की परतीत ॥ ३२५ ॥
मन को मिरतक देखि के, मति माने विश्वास । साधु तहां लौं भय करे, जो लौं पिंजर सांस ॥ ३२६ ॥
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जांणि । दसवां द्वारा देहुरा, तामै जोति पिछांणि ॥ ३२७ ॥
मन मरया ममता मुई, जहां गई सब छूटी । जोगी था सो रमि गया, आसणि रही बिभूति ॥ ३२८ ॥
मन मैला तन ऊजला, बगुला कपटी अंग । तासों तो कौआ भला, तन मन एक ही रंग ॥ ३२९ ॥
मन हि मनोरथ छाँड़ि दे, तेरा किया न होइ । पाणी में घीव नीकसै, तो रूखा खाइ न कोइ ॥ ३३० ॥
मनवा तो पंछी भया, उड के चला आकास । ऊपर से ही गिर पडा, यह माया के पास ॥ ३३१ ॥
मथुरा जाउ भावे द्वारिका, भावै जो जगन्नाथ । साधु-संग हरि-भजन बिनु, कछु न आवे हाथ ॥ ३३२ ॥
माखी गुड़ मैं गड़ि रही, पंख रही लपटाई । ताली पीटै सिरि घुनै, मीठै बोई माइ ॥ ३३३ ॥
माटी कहे कुम्हार से, तु क्या रौंदे मोय । एक दिन ऐसा आएगा, मैं रौंदूंगी तोय ॥ ३३४ ॥
मान महातम प्रेमरस, गरवा तण गुण नेह । ए सबही अहला गया, जभीं कहा कुछ देह ॥ ३३५ ॥

मानि महतम प्रेम-रस, गरवातण गुण नेह । ए सबहीं अहला गया, जबहि कहा कुछ देह ॥ ३३६ ॥
माया मरी न मन मरा, मर-मर गए शरीर । आशा तृष्णा न मरी, कह गए दास कबीर ॥ ३३७ ॥
माया छाया एक सी, बिरला जाने कोय । भगता के पीछे लगे, सम्मुख भागे सोय ॥ ३३८ ॥
माया तजी तौ क्या भया, मानि तजी नही जाइ । मानि बड़े मुनियर मिले, मानि सबनि को खाइ ॥ ३३९ ॥
माया तो ठगनी बनी, ठगत फिरे सब देश । जा ठग ने ठगनी ठगो, ता ठग को आदेश ॥ ३४० ॥
मार्ग चलते जो गिरा, ताकों नाहि दोष । यह कबीरा बैठा रहे, तो सिर करड़े दोष ॥ ३४१ ॥
माला पहरयां कुछ नहीं, भक्ति न आई हाथ । माथौ मूँछ मुंडाइ करि, चल्या जगत के साथ ॥ ३४२ ॥
माला पहिरै मनभुषी, ताथै कछू न होइ । मन माला को फैरता, जग उजियारा सोइ ॥ ३४३ ॥
माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर । कर का मन का डार दें, मन का मनका फेर ॥ ३४४ ॥
माली आवत देख के, कलियां करी पुकार । फूल-फूल ए चुन लिए, काल हमारी बार ॥ ३४५ ॥
माँगन मरण समान है, मति माँगो कोई भीख । माँगन से तो मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥ ३४६ ॥
मांगण मरण समान है, बिरता बंचै कोई । कहै कबीर रघुनाथ सूं, मति रे मंगावे मोई ॥ ३४७ ॥
मीठा सब कोई खात है, विष है लागे धाय । नीम ना कोई पीवसी, सब रोग मिट जाय ॥ ३४८ ॥
मूरख संग न कीजिये, लोहा जलि न तिराइ । कदली-सीप-भुजगं मुख, एक बूंद तिहँ भाइ ॥ ३४९ ॥
मूँड मुड़ाये हरि मिले, सब कोई लेय मुड़ाय । बार-बार के मुड़ते, भेड़ न बैकुण्ठ जाय ॥ ३५० ॥
मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन राम हिं आहि । अब मन राम हिं है रह्या, शीष नवावौं काहि ॥ ३५१ ॥
मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर । तेरा तुझकौं सौंपता, क्या लागै है मोर ॥ ३५२ ॥
मेरे संगी दोइ जरग, एक वैष्णौ एक राम । वो है दाता मुक्ति का, वो सुमिरावै नाम ॥ ३५३ ॥
मैं अपराधी जन्म का, नख-सिख भरा विकार । तुम दाता दुःखभंजना, मेरी करो संहार ॥ ३५४ ॥
मैं जाण्यूँ पाढ़िबो भलो, पाढ़िबा थे भलो जोग । राम-नाम सूं प्रीती करि, भल भल नींयो लोग ॥ ३५५ ॥
मैं जाण्यूँ मन मरि गया, मरि के हुआ भूत । मूये पीछे उठि लगा, ऐसा मेरा पूत ॥ ३५६ ॥
मैं मेरा घर जालिया, लिया पलीता हाथ । जो घर जारो आपना, चलो हमारे साथ ॥ ३५७ ॥
मैं मन्ता मन मारि रे, घट ही माहैं घेरि । जबहीं चालै पीठि दे, अंकुस दै-दै फेरि ॥ ३५८ ॥
मैं-मैं मेरी जिनी करै, मेरी सूल बिनास । मेरी पग का पैषणा, मेरी गलि का पास ॥ ३५९ ॥
मैं-मैं बड़ी बलाइ है, सकै तो निकसौ भाजि । कब लग राखौ हे सखी, रुई लपेटी आगि ॥ ३६० ॥
मैं रोऊँ जब जगत को, मोको रोवे न होय । मोको रोवे सोचना, जो शबद बोय की होय ॥ ३६१ ॥
यह तन काचा कुम्भ है, लिया फिरे था साथ । ढबका लागा फूटिगा, कछू न आया हाथ ॥ ३६२ ॥
यह तन जालों मसि करों, लिखों राम का नाउं । लेखणि करूं करंक की, लिखी-लिखी राम पठाउं ॥ ३६३ ॥
यह दुनियाँ दो रोज की, मत कर यासो हेत । गुरु चरनन चित लाइये, जो पूरण सुख हेत ॥ ३६४ ॥
यह दुनियाँ में आ कर, छाँड़ि देय तू ऐंठ । लेना हो सो लेइले, उठी जात है पैंठ ॥ ३६५ ॥
यह माया है चूहड़ी, और न चूहड़ा कीजो । बाप-पूत उरभाय के, संग ना काहो दीजो ॥ ३६६ ॥
ये तो है घर प्रेम का, खाला का घर नाहिं । शीष उतारे भुँई धरे, तब बैठें घर माहिं ॥ ३६७ ॥

रचनाहार कूं चीन्हि लै, खैबे कूं कहा रोइ । दिल मंदि मैं पैसि करि, ताणि पछेवड़ा सोइ ॥ ३६८ ॥
रात गंवाई सोय के, दिवस गंवाया खाय । हीरा जन्म अनमोल था, कौंड़ी बदले जाय ॥ ३६९ ॥
राम-नाम कै पटं तरै, देबे कौं कुछ नाहिं । क्या ले गुरु संतोषिए, हौंस रही मन माहिं ॥ ३७० ॥
राम-नाम चीन्हा नहीं, कीना पिंजर बास । नैन न आवे नींदरौं, अलग न आवे भास ॥ ३७१ ॥
राम पियारा छांड़ि करि, करै आन का जाप । बेस्या केरा पूतं ज्यूं, कहै कौन सू बाप ॥ ३७२ ॥
राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय । जो सुख साधु-सगं में, सो बैकुंठ न होय ॥ ३७३ ॥
राम रहे बन भीतरे, गुरु की पूजा ना आस । रहे कबीर पाखण्ड सब, झूठे सदा निरास ॥ ३७४ ॥
राम वियोगी तन बिकल, ताहि न छीने कोई । तंबोली के पान ज्यूं, दिन-दिन पीला होई ॥ ३७५ ॥
रोड़ा है रहो बाट का, तजि पाषंड अभिमान । ऐसा जे जन है रहै, ताहि मिलै भगवान ॥ ३७६ ॥
लकड़ी कहै लुहार की, तू मति जारे मोहि । एक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहि ॥ ३७७ ॥
लंबा मारग दूरि घर, बिकट पंथ बहु मार । कहौ संतों क्यूं पाइये, दुर्लभ हरि दीदार ॥ ३७८ ॥
लोग भरोसे कौन के, बैठे रहें ठरगाय । जीय रही लूटत जम फिरे, मैंढ़ा लुटे कसाय ॥ ३७९ ॥
वस्तु है ग्राहक नहीं, वस्तु सागर अनमोल । बिना करम का मानव, फिरैं यूं डांवाडोल ॥ ३८० ॥
शबद विचारी जो चले, गुरुमुख होय निहाल । काम क्रोध व्यापै नहीं, कबहूं न ग्रासै काल ॥ ३८१ ॥
शीलवन्त सबसे बड़ा, सब रतनन की खान । तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आन ॥ ३८२ ॥
सतगुर हम सूं रीझि करि, एक कहा कर संग । बरस्या बादल प्रेम का, भींजि गया अब अंग ॥ ३८३ ॥
सतसंगति है सूप ज्यों, त्यागै फटकि असार । कहैं कबीर गुरु नाम ले, परसै नहीं विकार ॥ ३८४ ॥
सब आए इस एक में, डाल-पात फल-फूल । कबीरा पीछा क्या रहा, गह पकड़ी जब मूल ॥ ३८५ ॥
सब काहू का लीजिये, साचां सबद निहार । पच्छपात ना कीजिये, कहै कबीर विचार ॥ ३८६ ॥
सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त । और न कोई सुणि सकै, कै साईं के चित्त ॥ ३८७ ॥
सबसे लघुताई भली, लघुता ते सब होय । जैसे दूज का चन्द्रमा, शीष नवे सब कोय ॥ ३८८ ॥
सबै रसायण मैं क्रिया, हरि सा और न कोई । तिल इक घर मैं संचरे, तौ सब तन कंचन होई ॥ ३८९ ॥
समझाये समझे नहीं, पर के साथ बिकाय । मैं खींचत हूँ आपके, तू चला जमपुर जाय ॥ ३९० ॥
सातों शबद ज्यूं बाजते, घरि घरि होते राग । ते मंदिर खाली पडे, बैसन लागे काग ॥ ३९१ ॥
साधु ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय । सार-सार को गहि रहे, थोथा देइ उड़ाय ॥ ३९२ ॥
साधु गाँठि न बाँधई, उदर समाता लेय । आगे-पीछे हरि खड़े, जब भोगे तब देय ॥ ३९३ ॥
साधु भूखा भाव का, धन का भूखा नाहीं । धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधु नाहीं ॥ ३९४ ॥
साधु सती और सूरमा, इनकी बात अगाध । आशा छोड़े देह की, तन की अन्तक साध ॥ ३९५ ॥
साहिब तेरी साहिबी, सब घट रही समाय । ज्यों मेहँदी के पात में, लाली रखी न जाय ॥ ३९६ ॥
सिर साटें हरि सेविये, छांड़ि जीव की बाणि । जे सिर दीया हरि मिलै, तब लगि हाणि न जाणि ॥ ३९७ ॥
सीतलता तब जाणियें, समिता रहै समाइ । पष छाँड़ै निरपष रहै, सबद न देख्या जाइ ॥ ३९८ ॥
सुख में सुमिरन ना किया, दुःख में किया याद । कह कबीर ता दास की, कौन सुने फरियाद ॥ ३९९ ॥

सुख सागर का शील है, कोई न पावे थाह । शबद बिना साधु नहीं, द्रव्य बिना नहीं शाह ॥ ४०० ॥
सुखिया सब संसार है, खावै है और सोवै । दुखिया दास कबीर है, जागै है और रोवै ॥ ४०१ ॥
सुमिरन की सुब्यों करो, ज्यों गागर पनिहार । होले-होले सुरत में, कहैं कबीर विचार ॥ ४०२ ॥
सुमिरन में मन लाइए, जैसे नाद कुरंग । कहैं कबीर बिसरे नहीं, प्रान तजे तेहि संग ॥ ४०३ ॥
सुमिरन सुरत जगाय कर, मुख से कछु न बोल । बाहर का पट बन्द कर, अन्दर का पट खोल ॥ ४०४ ॥
सुमिरन से मन लाइए, जैसे पानी बिन मीन । प्राण तजे बिन बिछड़े, संत कबीर कहे दीन ॥ ४०५ ॥
सुरति करौ मेरे साइयां, हम हैं भोजन माहिं । आपे ही बहि जाहिंगे, जौ नहिं पकरौ बाहिं ॥ ४०६ ॥
सोना सज्जन साधु जन, टूट जुड़ै सौ बार । दुर्जन कुम्भ कुम्हार के, ऐके धका दरार ॥ ४०७ ॥
सोवा साधु जगाइए, करे नाम का जाप । यह तीनों सोते भले, साकित सिंह और साँप ॥ ४०८ ॥
संगति सों सुख ऊपजे, कुसंगति सो दुख होय । कह कबीर तहँ जाइये, साधु संग जहँ होय ॥ ४०९ ॥
संत ना छाडै संतई, जो कोटिक मिले असंत । चन्दन भुवंगा बैठिया, तऊ सीतलता न तजंत ॥ ४१० ॥
संत न बांधै गाठड़ी, पेट समाता-तेइ । साईं सूं सनमुख रहै, जहाँ माँगे तहां देइ ॥ ४११ ॥
संत पुरुष की आरसी, सन्तों की ही देह । लखा जो चहे अलख को, उन्हीं में लख लेह ॥ ४१२ ॥
संत ही में सत बांटई, रोटी में ते टूक । कहे कबीर ता दास को, कबहूँ न आवे चूक ॥ ४१३ ॥
सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप । जाके हिरदै में सांच है, ताके हिरदै हरि आप ॥ ४१४ ॥
साँई आगे साँच है, साँई साँच सुहाय । चाहे बोले केस रख, चाहे घौंट भुण्डाय ॥ ४१५ ॥
साँई इतना दीजिये, जा में कुटुम्ब समाय । मैं भी भूखा न रहूँ, साधु ना भूखा जाय ॥ ४१६ ॥
साँई ते सब होत है, बन्दे से कुछ नाहिं । राई से पर्बत करे, पर्बत राई माहिं ॥ ४१७ ॥
साँई मेरा वाणियां, सहति करै व्यौपार । बिन डांडी बिन पालड़ै, तौले सब संसार ॥ ४१८ ॥
साँई सेती चोरियाँ, चोरा सेती गुझ । जाणैंगा रे जीवेगा, मार पड़ैगी तुझ ॥ ४१९ ॥
साँझ पड़े दिन बीतबै, चकवी दिन ही रोय । चल चकवा वा देस को, जहाँ रैन नहिं होय ॥ ४२० ॥
सिंह अकेला बन रहे, पलक-पलक कर दौर । जैसा बन है आपना, तैसा बन है और ॥ ४२१ ॥
सिंहों के लेहँड नहीं, हंसों की नहीं पाँत । लालों की नहि बोरियाँ, साधु न चलै जमात ॥ ४२२ ॥
स्वामी हूवा सीतका, पैलाकार पचास । राम-नाम काठें रहा, करै सिषां की आस ॥ ४२३ ॥
स्वाँग पहरि सो रहा भया, खाया-पीया खूंदि । जिहि तेरी साधु नीकले, सो तो मेल्ही मूंदि ॥ ४२४ ॥
लकडी जल कोयला भई, कोयला जल भयो राख । मैं पापिन ऐसी जली, कोयला भई न राख ॥ ४२५ ॥
लागी लगन छूटे नहीं, जीभ चोंच जरि जाय । मीठा कहा अंगार में, जाहि चकोर चबाय ॥ ४२६ ॥
लीक पुरानी को तजें, कायर कुटिल कपूत । लीख पुरानी पर रहें, शातिर सिंह सपूत ॥ ४२७ ॥
लूट सके तो लूट ले, राम नाम की लूट । पाछे फिरे पछताओगे, प्राण जाहिं जब छूट ॥ ४२८ ॥
लंबा मारग दूरिधर, विकट पंथ बहुमार । कहौ संतो क्यूं पाइये, दुर्लभ हरि-दीदार ॥ ४२९ ॥
हद चाले तो मानव, बेहद चले सो साध । हद बेहद दोनों तजे, ताको भता अगाध ॥ ४३० ॥
हरि संगत शीतल भया, मिटी मोह की ताप । निशिवासर सुख निधि लहा, अन्न प्रगटा आप ॥ ४३१ ॥

हरिजन सेती रुसणा, संसारी सूँ हेत । ते णर कदे न नीपजौ, ज्यूँ कालर का खेत ॥ ४३२ ॥

हरिया जाने रुखड़ा, उस पानी का गेह । सूखा काठ न जानही, कबहूं बरसा मेह ॥ ४३३ ॥

हरिरस पीया जाणिये, जे कबहुँ न जाइ खुमार । मैमता घूमता रहै, नाहि तन की सार ॥ ४३४ ॥

हाड जलै ज्यूं लाकडी, केस जलै ज्यूं घास । सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास ॥ ४३५ ॥

हिरदा भीतर आरसी, मुख देखा नहीं जाई । मुख तो तौ परि देखिये, जे मन की दुविधा जाई ॥ ४३६ ॥

हिन्दू कहें राम पियारा, तुर्क कहें रहमाना । आपस में दोउ लडी मुए, मरम न कोउ जाना ॥ ४३७ ॥

हीरा पडा बजार में, रहा छार लपिटाइ । बतक मूरख चलि गये, पारखि लिया उठाइ ॥ ४३८ ॥

हीरा परखै जौहरी, शबद हि परखै साध । कबीर परखै साध को, ताका मता अगाध ॥ ४३९ ॥

हीरा वहाँ न खोलिये, जहाँ कुंजड़ों की हाट । बांधो चुप की पोटरी, लागहु अपनी बाट ॥ ४४० ॥

हैवर गैवर सघन धन, छत्रपती की नारि । तास पटेतर ना तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥ ४४१ ॥

हंसा मोती विणन्या, कुञ्चन थार भराय । जो जन मार्ग न जाने, सो तिस कहा कराय ॥ ४४२ ॥

हाँसी खैलो हरि मिलै, कौण सहै षरसान । काम क्रोध त्रिष्णा तजै, तोहि मिलै भगवान ॥ ४४३ ॥

हूं तन तो सब बन भया, करम भए कुहांरि । आप आप कूं काटि है, कहै कबीर विचारि ॥ ४४४ ॥

***